हिन्दी विभाग

जमशेदपुर को-ऑपरेटिव कॉलेज

के छात्र समूह की त्रैमासिक दीवार पत्रिका

युवमानस

नवजन मन की गाथा

अंक : जनवरी-मार्च, 2024

संपादक: **बबिता माण्डी** सह-संपादक: **नज़रीन परवीन**

पृष्ठ सज्जा: **सोनी, पूनम, नंदनी, नीतु, छीता**

संपादकीय

प्रिय पाठकों,

हमारी त्रैमासिक पत्रिका युवमानस का यह साल 2024 का पहला अंक है। सर्दियाँ समाप्त होने पर है और बसंत हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। इसी प्रकार हम भी अपने पाठकों के मध्य नयी सुचनाओं, नये संदेशों को लेकर आए हैं। हमारी त्रैमासिक पत्रिका 'युवमानस' का उदेश्य ही यही है कि नवजन की मन की बात ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचे और उनकी प्रतिभा को एक मंच मिले।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। एक पत्रकार व सम्पादक के रूप में हमारा कर्त्तव्य बढ़ जाता है कि हम लोगों तक सुगम तथा सरल रूप से सच्चाई को रखें। सुप्रसिद्ध पत्रकार **प्रभास जोशी** लिखते हैं "न्यापालिका, कार्यपालिका, विधायका और प्रेस में मैं 'चौथा स्तंभ' हूँ तो पत्रकार होने के नाते मेरा अधिकार और कर्तव्य है कि इन तीन स्तंभों को मैं 'जज' करूं।"

वर्तमान दौर में मुख्यधारा की पत्रकारिता के द्वारा लोगों को सच्चाई से दूर रखा जा रहा है तथा फिजुल के मुद्धों में भटकाया जा रहा है। आज जब लोग बिगाड़ के डर से ईमान की बात नहीं कहतें, नवजन को चाहिए कि अपनी आवाज बुलंद करें और पूरी निर्भिकता से लोकतंत्र के बचाव के लिए खड़े रहें।
हमारे युवमानस पत्रिका के पूर्व सम्पादक **संजय सोलोमन** लिखते हैं-

"महकूमों, अब सब के सब इक साथ चलो तो बात बने
क़तरा-क़तरा मिलकर इक सैलाब बनों तो बात बने

तूफ़ाँ से डर कर साहिल पर रहना है आसान बहुत
मौजों से लड़ कर दरिया को पार करो तो बात बने

चुप रहने, सब कुछ सहने, ऐसे जीने से क्या हासिल
आँख मिला कर हक़ से हक़ की बात करो तो बात बने"

- बबिता माण्डी (स्नातकोत्तर सेमेस्टर 3)

शिक्षा एवं रोजगार से वंचित सबर आदिवासी

"तुम्हारी फ़ाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकड़ें झूठे हैं ये दावा किताबी है"

अदम गोंडवी की ये पंक्तियाँ झारखण्ड, उड़ीसा, बंगाल के सुदूर क्षेत्रों में बसे सबर आदिवासियों पर उपयुक्त बैठती है, जिनकी सुधि लेने का समय ना तो सरकार के पास है ना प्रशासन के पास। ये वर्ग राजनीति के तले सबसे अधिक पिसते है, गरीब सबर आदिवासीयों के बच्चे जिन्हें ना तो शिक्षा की रोशनी मिलती है ना ही पोषक आहार। गरीबी और अशिक्षा इन्हें इसी दुनिया में नर्क सा जीवन जीने को मजबुर कर रही हैं। इन बच्चों को इनके माता-पिता जंगलों में लकड़ी पत्ता चुनने भेजते हैं या ईंट भट्ठीयों में लगा देते हैं।

सरकार इनके लिए योजनाएँ तो बनाती है लेकिन उस पर कार्य ना के बराबर ही होता है। सरकारी मेजों पर फाइलें साल दर साल घुमती रहती है, पर अपनी मंजिल तक कभी नहीं पहुँचती। विद्यालय से इन बच्चों का नाता कभी जुड़ा ही नहीं। सरकारी कागजों पर, नक्शों पर तो सब बने हुए हैं। सरकार को तसल्ली है कि अस्पताल बन गए हैं, पुल बने हैं, सड़के पक्की है, विघालय खुल गये हैं, बिजली तो पहाड़ों के अंदर बसे आखिरी गाँव तक पहुँच चुकी है लेकिन ये चीजें फाइलों में ही है, हकीकत में नहीं। कितनी ही गर्भवती महिलाएँ समय पर प्रसाव ना होने के कारण काल के गाल में समा जाती है। इन खोखले किताबी दावों में आदिवासी, सबर बच्चें प्रतिदिन इसी व्यवस्था के नीचे आकर अपना दम तोड़ रहे हैं, जो अत्यंत ही दयनीय है। इस दिशा में जल्द ही सकारात्मक कदम बढ़ाने की ज़रूरत है।

– सोनी देवगम (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

पूंजीपतियों की भेंट चढ़ता हसदेव जंगल

सतपुड़ा के जंगलों पर कविताएँ इसलिए लिखी जा सकी क्योंकि वो अस्तित्व में थे, घने थे, वन्यप्राणियो और आदिवासियो का घर। अमेजन के वर्षावनो को हम धरती का फेफड़ा कहते हैं। अकेला यही जंगल धरती को 20% ऑक्सीजन प्रदान करता है। जब पेड़ हमारे मानव अस्तित्व के लिए इतने महत्वपूर्ण हैं तो फिर हम क्यों नाहक प्रकृति को तबाह करने में लगे हैं। आज मानव, विलास को ही विकास समझ रहा है। नियम कानूनों की धज्जियाँ सरेआम उड़ाई जा रही है। अभी विलासियों की नजर छत्तीसगढ़ के हसदेव जगंल पर है, जिसके पेड़ मध्यप्रदेश से झारखण्ड तक फैले हैं। जहाँ जाना प्रतिबंधित था, उन जंगलों को नीलाम कर, कोयला खदान बनाने की प्रकिया तेज कर दी गई है। अनुमान लगाया गया है कि करोड़ो टन कोयला जमीन ने अपने अंदर दफन कर रखा है और उस खजाने तक पहुँचने में यह "जगंल" रोड़ा है। विनाशी सत्ताधारियों और पूँजीपतियों के लिए यह जगंल मात्र है, लेकिन उसके आस-पास बसे आदिवासियों के लिए यह उनका भरण-पोषण करने वाली माँ है, जो साल भर उनको वनस्पतियाँ, फल-फूल प्रदान करती है, जिससे उनका जीवन चलता है। वोट के नाम पर इन्हें झूठे प्रलोभन दिए गए, नौकरी के नाम पर इनकी जमीनें वर्षों से लूटी गईं पर किसी को नौकरी नहीं मिली, निहत्थे आंदोलनकारी आदिवासियों को नज़रबंद किया जा रहा है, घर से उठाया जा रहा ताकि जंगल काटा जा सके। वन्यजीवों के घर उजड़ रहे हैं, पर सब खामोश हैं। हमारी ये चुप्पी ही हमें ले डूबेगी। आइस्टीन के शब्दों में – "Man kind invented the atomic bomb, but no mouse would ever construct a mousetrap!" मानव जाति ने परमाणु बम का आविष्कार किया लेकिन कोई चूहा कभी चूहादानी का निर्माण नहीं करेगा। इंसान अपने विनाश की कहानी स्वंय लिखता जा रहा है। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् तथा भारतीय वन्यजीव संस्थान ने भी सरकार को चेताया है कि इसके विनाशकारी प्रभाव देखने को मिलेंगे। इससे पहले ही बहुत देर हो जाए, इन विनाशकारी पुंजिपतियों पर नकेल कसने की ज़रूरत है।

– नरेंद्र सोय (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

आधुनिक समाज मे दलितों का संघर्ष

कहने को तो हम आधुनिक हैं। सभ्य समाज के निवासी हैं। जंगल, पहाड़ों, गुफाओं से बाहर निकल कर हमने गाँव, शहर, महानगर बसा लिया है और अपनी अज्ञानता और अंधकार पर विजय प्राप्त कर ली है। ऐसा हमने देह पर दुनिया को दिखाने के लिए छाप रखा है। लेकिन इस तथाकथित सभ्य समाज के लोगों की ये बातें तब झूठी लगने लगती है जब किसी इंसान के साथ सिर्फ भेदभाव इसलिए होता है कि वह पिछड़े वर्ग से आता है। यह जातिगत शोषण सदियों से चला आ रहा है। इसका एक मुख्य करण यह कि उन्हें सदियों तक शिक्षा से दूर रखा गया।

पराधीन भारत में जब पहली दलित लेखिका मुक्ता साल्वे ने मात्र 14 साल की उम्र में दलितों पर एक निबंध लिख कर उसे हजारों की भीड़ में पढ़ा, तो इससे उस समय तथाकथित उच्च जाति का अहंकार रखने वाले लोगों के गाल पर एक तमाचा सा पड़ा। इस निबंध से प्रभावित होकर जब मेजर कैडी ने मुक्ता को चॉकलेट भेंट की, तो इस पर उन्होंने कहा कि सर हमें चॉकलेट नहीं, लाइब्रेरी चाहिए। उस दौर में यह एक असाधारण बात थी। वो जानती थी कि शिक्षा से ही हम अपनी स्थिति और इस व्यवस्था को बदल सकते हैं।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने इसे धरातल पर लाने का कार्य किया। दलितों को समानता का अधिकार दिलाने और सम्मानजनक जीवन प्रदान करने के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप आज संविधान में तो सारे नागरिक एक समान है किन्तु समाज से आज भी यह भेदभाव का रोग समाप्त नहीं हुआ।

आज के आधुनिक युग में भी हमें प्रतिदिन जातिगत भेदभाव की खबरें सुनने को मिलती है। कभी राजस्थान में शिक्षक द्वारा पिटाई किये जाने पर दलित छात्र की मौत हो गई, तो कभी मध्यप्रदेश में दलित बच्चों से विद्यालय का सेप्टिक टैंक साफ करवाया गया। लेकिन अब इस तरह के शोषण को खामोशी से सहा नहीं जाता बल्कि उसके विरुद्ध आवाज़ उठाया जाता है, लड़ा जाता है। जब तक समाज से यह भेदभाव खत्म नहीं हो जाता, हमारी लड़ाई जारी रहेगी। पाश के शब्दों में कहें तो, "हम लड़ेगें जब तक कि दुनिया में लड़ने की जरूरत बाकी है।"

प्रीति बुढ़ (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

साहित्यः समाज का दर्पण

साहित्य के विषय में यह प्रचलित धरणा "साहित्य, समाज का दर्पण है" अक्षरशः और कालतीत सत्य है। जिस तरह दर्पण हमारा वास्तविक प्रतिबिम्ब दिखाता है उसी प्रकार साहित्य समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है। हमारे आसपास जो कुछ घटित होता है, साहित्य उसका विश्लेषण करके हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य में ऐसे अनेक साहित्यकार कवि तथा आलोचक हुए जिन्होंने समाज को आईना दिखाने के लिए कलम उठाया। इतिहासकार सिर्फ बीते हुए समय को बताता है पर साहित्यकर वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की भी कल्पना करता तथा उसे लिखता है। साहित्य समाज में फैले बुराइयों को प्रतिबिम्ब करता है और जो घटनाएँ मानव नेत्रों से छुट जाती या साधारण मनुष्य उसे कुछ समय बाद भूल जाता है उसे साहित्यकार साहित्य में जीवित रखता है। जैसे प्रेमचंद ने अपने समय में जो बातें लिखी थी वो आज भी प्रासंगिक है। उनकी कहानियों में चाहे पात्र दलित हो, स्त्री हो, समाज उनके साथ किस प्रकार से पेश आता है इसको उन्होंने समाज के सामने रखा। जिसे हम टालते रहते हैं, नकारते रहते हैं। कफ़न में जिस प्रकार से लाचारी और भुख को दर्शाया गया है, निर्मला मे बेमेल विवाह और एक स्त्री के मनोदशा जो वर्णन है, वह आज भी कहीं न कहीं घटित हो रही है। हरिशंकर परसाई के व्यंग्य हमें समाज का दोहरा चेहरा दिखाते है। भगत की गत, भोलाराम का जीव तथा सदाचार का तावीज़ के रूप म हमें समाज में फैले भयावह स्थितियों के दर्शन कराती है।

अतः यह एक साहित्यकार का कर्तव्य बन जाता है कि वो अपने समाज का यथा संभव यथार्थ चित्रण करे और समाज को उसका स्पष्ट प्रतिबिंब दिखाए।

प्रियंका कुमारी (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

आपबीती

मैं भी तो एक इंसान हूँ।
किसी की दुलारी बिटिया, किसी राम की सिया,
किसी कुल का सम्मान हूँ।
फिर क्यों करते हो प्रहार मेरी अस्मिता पर?
क्या मैं तुमसे अलग इंसान हूँ?

जिस्म नोचते हो, रूह तड़पती है,
आवाज़ की डर ख़ातिर, जिह्वा तक काटा जाता है,
न्याय के नाम पर उछलती है इज़्ज़त,
क्यों देखता है समाज घृणा की नज़रों से?
क्या मैं तुमसे अलग इंसान हूँ?

क्यों? अपराधी बेख़ौफ़ घूमते हैं?
क्या न्याय के नाम पर बस मैं एक काम हूँ?
मैं पीड़ित समाज के डर से अंधेरे में कहीं गुमनाम हूँ?
क्या मैं तुमसे अलग इंसान हूँ?

अब आस कह रही, कृष्णा और भीम बस एक नाम है?
नजरे सहम गई रक्षकों के भक्षक रूप देख कर।
दम टूट रही प्रभु, इंसाफ़ मांगते क्यों?
आज फिर बिना ग़लती मैं बदनाम हूँ।
क्या मैं तुमसे अलग इंसान हूँ?

– पुनम कुमारी (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

“

सरकारें क्यूँ मूल जाती हैं कि हमारा राष्ट्र एक लोकतंत्र है
और यहाँ का नागरिक गुलाम दास नहीं हैं।
वो लोकतांत्रिक राष्ट्र भारत महादेश का स्वाभिमानी नागरिक है।
सियासत की यह तर्ज बदलिए!

– कृष्णा सोबती

जागो

सरकार, बिक चुकी है पूंजीपत्तियों के हवाले।
इस गरीब को, अब कौन संभाले॥
गिरता संभलता,
कई ठोकरें ये खाता, फिर भी नहीं समझ ये पाता।
इन्हीं के मत पर, आते हैं ये दिन॥
अब तो संभलो, अब तो जागो।
पढ़ लिख कर तुम यूं न भागो।
वरना बदल डालेंगे ये राष्ट्र हमारा॥

– राहुल मंडल (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

मेरे प्यारे बाबा

जिसने बनाया घर,
उस घर में वही न रह पाया।
देखो अब छोटा बेटा जवान हो गया।
पाई-पाई जोड़कर जिस घर को मैंने बनाया,
देखो वो कैसे बिखरने को आया।

मैंने इस घर को फूलों से था सजाया,
देखो वो कैसे बिखरने को आया।

कि अब जो मेरी उमर आई है।
सब बेटों ने मिलकर घर के साथ,
मेरी भी कीमत लगाई है।

मूल से ज्यादा ब्याज होता है,
बात जब मैंने यह सबको बताया,
आखिरी में पोतों ने भी खुदको,
इस घर का हकदार बताया।

– ज्योति कुमारी शर्मा (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

"बीता हुआ कल मर चुका है
आने वाला कल अभी आया नहीं है
मेरे पास बस एक दिन है
और मैं इसमें खुश रहूँगा!
– ग्रशो मार्क्स

बचपन के वो दिन

बचपन के वो दिन, अब न जाने कहाँ खो गए।
सोच रहे है क्यों हम, इतने बड़े हो गए॥
घर, स्कूल और खेल का मैदान बस यही दिनचर्या रहना,
सुबह जागे तो स्कूल, शाम को थककर सो गए।
प्यार मिलता प्यार बांटते, सिर्फ प्यार की भाषा जानते,
प्यार से जिसने गले लगाया, बस उसके ही हो गए।
भेद नहीं आँखो ने जाना, कौन है अपना कौन पराया,
नफ़रत की ये फसल कहाँ थी, कौन बीज ये बो गए।
सोच रहे हैं क्यों हम इतने बड़े हो गए।
बचपन के वे दिन अब न जाने कहां खो गए ॥

– रूपा कुमारी (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 3)

“

जात क्या है।
जात दो ही हैं
एक गरीब और दूसरी अमीर।

– फणीश्वरनाथ रेणु

“

भूखों का कैसा हो वसन्त ?
चारों तरफ से बरसती हो रोटियाँ
और भरे हों गोदाम
नंगों का कैसा हो वसन्त ?

– राजकुमार कुंभज

“

पत्रकार को मच्छर के तरह होना चाहिए
जो सत्ता में बैठे लोगों को
हमेशा भनभना के तंग करते रहे।

– गैब्रियल गार्सिया मार्केज़

धन्यवाद